

सनातन धर्म और विशेष धर्मों का पारास्पारिक सम्बन्ध : एक अध्ययन



डॉ अंजना कुमारी शर्मा,
एम.ए., पीएच.डी. (दर्शनशास्त्र)
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय
मुजफ्फरपुर (बिहार)

सनातन धर्म या सामान्य धर्म एवं विशेष धर्म की अलग-अलग व्याख्या की प्रत्युति से ऐसा समक्ष लेना कि ये दोनों धर्म एक-दूसरे से पृथक और सर्वदा भिन्न हैं, भास्कर होगा। सामान्य धर्म या सनातन धर्म की साधना व्यक्तिगत और कामगत होती है। कहने का अर्थ यह है कि यदि सनातन धर्म निरपेक्ष है तो उसकी साधना सापेक्ष है। विशेष धर्मों के द्वारा ही सनातन धर्म की प्राप्ति होती है। इसलिए विशेष धर्म सनातन धर्म से अलग नहीं है। यदि सनातन धर्म मूल है तो विशेष धर्म उसकी शाखाएं और टहनियाँ हैं जिनके द्वारा सनातन धर्म की सार्वभौमता और व्यापकता परिलक्षित होती है। ये विशेष धर्म अपने-अपने ढंग से सनातन धर्म ही सिद्धि करते हैं। इस तरह सनातन धर्म और विशेष धर्म एक दूसरे के पूरक हैं। सनातन धर्म के अभाव में विशेष धर्म का भी रूप विकृत हो जायेगा। सनातन धर्म आधार है, भूमि है जिसपर विशेष धर्म की विभिन्न आधृतियाँ चित्रित हैं। इस संबंध में भारतीय मनोषी महर्षि अरविन्द का विचार अत्यन्त समीचीन है।

कुल धर्म

परम्परा से चले आ रहे परिवार के नियमों एवं आधारों क्रियान्वयन ही कुल धर्म कहा जाता है।

युग धर्म

धर्मशास्त्रों की यह मान्यता है कि प्रत्येक युग के अपने धर्म एवं नैतिक आदर्श हैं। सत्युग में तप, वेता में ज्ञान, द्वापर में या, कलि में केवल दान या ईश्वर नाम कीर्तन ही श्रेष्ठ धर्म कहा गया है।

राजधर्म

राजा के लिए जो कर्तव्य है, चाहे वे प्रजा हो, देश के प्रति हो, वे सभी राजधर्म कहे जाते हैं। राजा के लिए यह आवश्यक है कि वह धर्म और

नीति का जानकार हो। सज्जनों की रक्षा एवं दूर्जनों को दण्ड देना राजा का प्रमुख कर्तव्य है। राज्य में सुख-शान्ति एवं समृद्धि बनाए रखना उनका लक्ष्य है। आपद् धर्म

सामान्य धर्म एवं विशिष्ट धर्मों के अतिरिक्त हमारे धर्मशास्त्रों में आपदधर्म की भी चर्चा है। देश काल एवं परिस्थिति के कारण हमारे जीवन में कुछ अवसर भी आते हैं जहाँ हमें अपना जीवन निर्वाह करना तथा कर्तव्य पालन करना असम्भव होने लगता है। ऐसी स्थिति में हमारे शास्त्रों में आपद् धर्म का विधान है।

वर्ण धर्म

वर्ण धर्म का तात्पर्य विभिन्न धर्मों के कर्तव्यों और नियमों से है। ब्राह्मण के लिए वेद पढ़ना एवं वेद पढ़ाना, या करना एवं करना, दान देना एवं लेना प्रधान कर्तव्य है। क्षत्रिय के लिए प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना और विषय में अनासक्त रहना प्रमुख कर्तव्य है। वैश्य के लिए पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, व्यापार करना एवं कृषिकर्म करना प्रमुख कर्तव्य हैं, शुद्धों के लिए उपर्युक्त तीन वर्णों की सेवा करना प्रमुख कर्तव्य है।

आश्रम धर्म:

ब्रह्मचर्य आश्रम में इन्द्रियों का निग्रह और वेदाध्ययन प्रमुख कर्तव्य है। गृहस्थाश्रम दूसरा आश्रम है। यह सभी आश्रमों का प्राण है। मनुस्मृति में कहा गया कि जिस प्रकार प्राण वायु का आश्रय लेकर सभी प्राणी जीवित रहते हैं। उसी प्रकार गृहस्थ आश्रम का आश्रय लेकर सभी आश्रम चलते हैं। इसकी अवधि 25 साल से 50 साल की अवस्था है। धर्म के तहत धनोपार्जन, परिवार का भरण-पोषण, दान पुण्य तक अन्य सामाजिक कार्य इस आश्रम के मुख्य कर्तव्य हैं।

धर्म और सम्प्रदाय

धर्म के स्वरूप की व्याख्या के क्रम में धर्म सम्प्रदाय के संबंध का संक्षिप्त उल्लेख करना प्रासंगिक और आवश्यक है। आज विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में जिन विभिन्न धर्मों का पठन-पाठन किया जा रहा है वे वास्तव में धर्म नहीं, सम्प्रदाय हैं। इन धर्मों के प्रवर्तक हैं और इनकी शुरुआत किसी खास काम-खण्ड में हुई है। विद्वानों की मान्यता है कि केवल हिन्दू-धर्म ही एक ऐसा धर्म है, जिसकी शुरुआत किसी महापुरुष विशेष से नहीं है और न उसकी शुरुआत की अवधि ही निश्चित हैं। यही कारण है कि केवल हिन्दू-धर्म को यदा-कदा सनातन धर्म भी कहा जाता है। धर्म के स्वरूप की व्याख्या के क्रम में यह स्पष्ट रूप से बतलाया गया कि धर्म शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है- इनमें ‘स्वभाव’ प्रमुख है। मनुष्य का स्वभाव एक है। मनुष्य स्वभावतः भौतिक सुखों से तृप्त नहीं है। उसकी आत्मा शाश्वत सुख की ओज में है। शाश्वत सुख की प्राप्ति ही मानव का सच्चा और एकमात्र धर्म है। इस तरह धर्म मूलतः एक है, अनेक नहीं है। भारतीय संस्कृति में ‘धर्म’ का प्रयोग मुख्य रूप से किन-किन अर्थों में हुआ है, उसकी जानकारी आवश्यक है। इसी प्रकरण में

वेद, उपनिषद्, धर्मशास्त्र या स्मृति, वाल्मीकि रामायण, महाभारत पुराणादि में वर्णित धर्म की अवधारणा का संक्षिप्त परिचय देना अभीष्ट है।

बौद्ध धर्म :

दर्शन में 'बोधिसत्त्व' की प्राप्ति को जीवन का आदर्श—रूप माना गया है तथा इसके लिये 'त्रिरत्न'— शील, समाधि और प्रज्ञा—का विधान है जो आष्टांगिक मार्ग के अन्तर्गत आ जाता है। आष्टांगिक मार्ग का पथिक 'शील' द्वारा शारीरिक शोधन करता है, जिसके अन्तर्गत समस्त सात्त्विक कर्म समाहित हैं। शील का अभ्यास करते हुये साधक को अपने कार्य और वचन का पूरा संयम रखना होता है। उसे प्राणियों की हिंसा, चोरी करना, मिथ्याचार, असत्य भाषण और मादक द्रव्यों से विरत रहना होता है। बौद्ध धर्म में साधक को शील का किसी भी प्रकार से परित्याग करना निषिद्ध माना गया है। इस प्रकार सद्गुणों को धारण कर साधक 'बोधिसत्त्व' को प्राप्त करता है। बोधिसत्त्व का 'स्वार्थ' इतना विस्तृत होता है कि उसके 'स्व' की परिधि में जगत् के समस्त जीव समा जाते हैं। उसके प्रधान गुण होते हैं— महामैत्री तथा महाकरुणा।

हिन्दू—धर्म में भी आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति मानव जीवन का परम उद्देश्य है। हिन्दू—धर्म वस्तुतः अनुभूतिमूलक धर्म है और एकतत्त्वता के अभेदमूलक भाव का सृजन ही इसका चरमलक्ष्य है। यहाँ यह माना गया है कि ईर्ष्या से परे, कल्याण करने के भाव को प्रेरित करने से ही आध्यात्मिक ज्ञान का उदय सम्भव है और आध्यात्मिक ज्ञान के उदय से ही अभेदमूलक भाव समृद्ध हो सकता है। हिन्दू—धर्म में आध्यात्मिक पूर्णता का चाहे कोई भी मार्ग क्यों न हो, बिना आत्म—नियंत्रण की नैतिक—सम्पदा तथा आत्म—संतोष अथवा दुःख सहने की शक्ति जैसे सद्गुणों का धारण किये बिना कोई व्यक्ति इस आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। इस प्रकार यहाँ आन्तरिक शुभत्व को ही वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन का आधार माना गया है। हिन्दू—धर्म में एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य जितना प्रखर है उतना शायद किसी अन्य धर्म में प्रखर नहीं है और वह है त्याग द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति — 'त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः'। चाहे कोई भी धर्म—विधि क्यों न हो, उसके द्वारा चरम लक्ष्य की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक उसमें त्याग का भाव न हो। हिन्दू—धर्म में आध्यात्मिक अनुशासन के रूप में निहित ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग तथा ध्यानयोग भी त्याग पर ही आधारित हैं। अतः त्याग द्वारा ही अमृतत्व की प्राप्ति वास्तविक अर्थ में सम्भव है। यही सनातन धर्म का मूलमंत्र है जिसे हिन्दू—धर्मावलम्बी आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति के क्रम में अनिवार्य रूप से धारण करते हैं। चूँकि यह नियम सनातन है इसीलिये हिन्दू धर्म—ग्रन्थों एवं दार्शनिक पद्धतियों में इसे सम्यक् रूप से समादृत देखे जाते हैं। भारतीय धर्म—ग्रन्थों में आध्यात्मिक मूल्य के रूप में स्थापित सद्गुण—विचार मानव के लिये आज भी उतने ही आवश्यक हैं जितने प्राचीन युग में थे। अतिआधुनिकता के इस युग में मूल्यों का मूल्यान्तरण हो रहा है जिसके कारण सारे मूल्य टूट रहे हैं। मूल्यों के क्षण के कारण ही सर्वत्र अशांति व्याप्त है। इन नैतिक मूल्यों का, जो सफल जीवन की कुंजी है तथा मानवता का आधार है, महत्त्व कम होने के कारण ही आज समाज एवं राष्ट्र में अस्तव्यस्तता एवं भ्रष्टाचार—दुराचार व्याप्त है। नैतिक मूल्यों से रहित होते जा रहे इस विश्व में कुंठारहित एवं शांतिपूर्ण जीवन जीने

के लिये मानव को अपने सांसारिक—जीवन एवं आध्यात्मिक—जीवन में समरूपता लाना चाहिए। सांसारिक सुखों की प्राप्ति के समय भी उन्हें अपने उच्चतम आदर्श के अनुरूप आचरण करना ही एकमात्र विकल्प है क्योंकि जब तक हम अपने जीवन में इन महानतम् नैतिक मूल्यों को सर्वोपरि स्थान नहीं देंगे तब तक मानव तो प्रगति करेगा, मानवता नहीं।

निष्कर्ष

धार्मिक क्रियाओं में निष्काम कर्मता का भाव जुट्टा गया और वैदिक काल में ही धर्म का अन्तिम प्रयोजन आत्मसाक्षात्कार या आत्मा और परमात्मा का मिलन है। उपनिषदों में भी धर्म शब्द मुख्य रूप से इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। भारतीय दर्शनों में खासकर मीमांसा और वैशेषिक दर्शन में धर्म शब्द का प्रयोग लौकिक यश और पारलौकिक मोक्ष के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। महाभारत में ‘धर्म’ शब्द अनेक अर्थों में आया है जिनमें मुख्य रूप से धर्म शब्द का प्रयोग वस्तुओं एवं प्राणियों के स्वभाव, परमात्मा-प्राप्ति के साधन, महाजनों के उपदेश के अर्थ में हुआ है। महाभारत में ‘धर्म’ शब्द का उत्कर्ष तो वहाँ तक बतलाया गया है कि जिस धर्म में दूसरे धर्म की निन्दा नहीं हो, वही सच्चा धर्म है। जिस धर्म में अन्य धर्मों को ओठा दिखलाया जाय, वह धर्म नहीं, कुधर्म है। यह भारतीय धर्म-अवधारणा की पराकाष्ठा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. उपाध्याय, आचर्य बलदेव : भारतीय दर्शन की रूपरेखा, वाराणसी, चौखम्भा, ओरियनलिया, 1676.
2. वही पृष्ठ।
3. आश्रेय, भीखनलाल : “भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास, लखनऊ हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1664.
4. उपाध्याय, आचर्य बलदेव : भारतीय दर्शन की रूपरेखा, वाराणसी, चौखम्भा, ओरियनलिया, 1676.
5. चट्टोपाध्याय, देवीप्रसाद : भारतीय दर्शनः सरल परिचय.
6. वही पृष्ठ.
7. झा, पी० : पूर्व मीमांसा इन इट्स सोर्सेज, वाराणसी, हिन्दी यूनिवर्सिटी प्रेस, 1642.
8. महाभारत, 1.1.7.
9. श्रीमद्भगवद्गीता, 6.17.
10. वैशेषिक सूत्र.